मोक्ष मार्ग का सोपान : तप

डॉ. सरोच कोचर
अध्यक्षा
राजस्थान संस्कृत अकादमी, जयपुर

जैन आचार शास्त्रों में तपश्चर्या को मोक्ष के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य बताया गया है। उत्तराध्ययन- सूत्र में एक स्थान पर कहा गया है, कि आत्मा ज्ञान से जीव आदि भावों को जानता है दर्शन से उसका श्रद्धान करता है चरित्र से कर्म आस्त्रवों को रोकता है और तप से विशुद्ध होता है। तपश्चर्या वस्तुतः जैन जीवनपद्धति है। तप से पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा होती हैं। तपस्या इच्छा, कामना, विषय ,कषाय को तपाने के लिए है। इच्छानिरोधस्तपः इच्छाओं वासनाओं का निरोध करना तप है। इच्छानिरोध से शरीर के ममत्व भाव में कमी होती है और जब ममता या आसक्ति घटने लगती है तब वह तप है, अन्यथा वह ताप है। मूल रूप से कर्मों के क्षय का भाव इसमें प्रधान होता है। कर्मों का क्षय करने के लिए मनुष्य योनि सर्वश्रेष्ठ है।

इंग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ का कुत्ता रानी के कोमल करों से सहलाया जाता है, ए.सी की कार में घूमता है, डनलप के गद्दे पर बैठता है, कूदता है, चांदी के प्याले में रानी के कर कमलों से दुग्ध - पान करता है और इधर एक व्यक्ति तपपाती- कड़कड़ाती धूप के अंदर पत्थरों को तोड़ता है, पसीने से लथपथ होता है, खाना तो दूर पानी तक उसको मुश्किल से मिलता है, और दुत्कार पाता हुआ रोटी खाता है,गर्म पत्थर की शिला पर ही शयन करता है।जब उसे कहा जाता है कि तुम इतने कष्ट उठा रहे हो तुम क्यों ना महारानी का कुत्ता बन जाते हो जिससे उनके घर में आराम से रह सकोगे। वह कहता है कि मैंने बहुत मुश्किल से न जाने कितने भवों में शुभ कर्म करने के बाद मनुष्य जीवन को प्राप्त किया है। मुझे इसी जीवन में समता भाव से सब कुछ सहन करते हुए अपने कर्मों का क्षय करना है और अशुभ से शुभ में प्रवेश करना है।

मानवजीवन मिलना बहुत मुश्किल है। मैं चाहता हूं मेरे पर जो भी संकट आए मुझे शांति से सहन करने की शक्ति मिले, क्योंकि यह संकट भी मेरे ही कर्मों के कारण हैं। अच्छे कर्मों का फल अच्छा है , बुरे कर्मों का फल बुरा होता है।मेरी साधना में मानसिक निर्मलता ही मेरी कर्म-निर्जरा का मुख्य कारण बने। कर्म की गति न्यारी है।प्रत्येक कार्य को विवेक एवं सही समझ के साथ अनासक्ति भाव से शास्त्रोक्त विधि के अनुसार करें तो वह हमारा शुभ कर्म की ओर अग्रसर होना है।

इसे हम एक दृष्टांत से इस प्रकार समझेंगे। एक साधु महाराज के पास एक व्यक्ति जाता है और कहता है, कि मैं अपने जीवन को सफल बनाने के लिए आपसे संयम-जीवन अंगीकार करना चाहता हूं। मुझे दीक्षा दे दीजिए। गुरु महाराज उसके आने से लेकर बैठ कर और अनुरोध करने की प्रक्रिया को देखते हैं। उसमें विनय के अभाव को देखते हैं, तब गुरु महाराज कहते हैं तुम जाओ क्षय करो। वह व्यक्ति जाता है 3 दिन का उपवास करके वापस आता है और कहता है, मैंने क्षय कर लिया। अब तो मुझे दीक्षा दे दो। गुरु महाराज उसको देख कर कहते हैं, जाओ और करके आओ। सात दिन के उपवास करके वह पुनःआता है।

महाराज कहते हैं बेटा क्षय करो तो वह सीधे 15 दिन के उपवास करता है। अब उसकी हड्डियां पसलियां दिखना प्रारंभ हो जाती है। वह आकर कहता है, अब तो दीक्षा दे दो। गुरु महाराज ने वहीं से कहा भैया अभी और क्षय करो। वह पुनःजाता है एक माह के उपवास करके लौटकर आता है, कहता है अब तो दे दो। तो गुरु महाराज उन्हें कहते हैं कि क्षय करो क्षय करो। इतने में वह व्यक्ति आवेश में आता है। कहते हैं कि क्रोध आने पर विवेक का दीपक बुझ जाता है और आचरण अंधा हो जाता है। ऐसा ही घटा उस व्यक्ति के साथ, वह अपने गुरु के प्रति मान-मर्यादा को भूल गया और कहने लगा कि आप तो रोज भोजन करते हो और हमें क्या मारना चाहते हो कहते हो क्षय करो क्षय करो। तब गुरु महाराज कहते हैं ज्ञानी तुमनेअपना शरीर थका लिया, मैंने यह नहीं कहा था कि तुम शरीर का क्षय करो, दुबला करो। मैं तो यह कह रहा था विषय कषाय कम करो, जो तुमने अभी तक किया नहीं है। देखो आवेश में आग बबूला होने से अभी तक तुम्हारे कान फड़फड़ा रहे हैं, नेत्र लाल हो गये है, हाथ पैर कांप रहे हैं। भैया ध्यान रखना शरीर को सुखाना मात्र साधना नहीं है। विषय कषायों को समाप्त करना, क्षय करना ही साधना है जिसके हृदय में काषायिक भाव होगा, विश्वास रखना तपस्या तो होगी पर वह तपेगा नहीं। ऐसी स्थिति में कर्मों का क्षय नहीं होगा।

क्रोध हमारे भव भ्रमण में वृद्धि करने वाले हैं। चण्डकौशिक पूर्व भव में मुनि थे। केवल क्रोध के कारण वे तापस बने और आर्त ध्यान के कारण मर कर चण्डकौशिक सर्प बने। तप से कर्मों को नष्ट करके अनंत दर्शन ज्ञान चरित्र वीर्य को प्राप्त कर सकते थे, किंतु क्रोध से गति बदल गयी। यह क्रोध अहम भाव के कारण आया। तो हमें जीवन में अहम को दूर करना है। अहम दूर होगा तभी हम अर्हन् बन सकते हैं।

भूखे रहकर गाल पिचक जाए, हड्डियां दिखे, आंखें धस जाये, शरीर कृश काय हो जाए, जरा सी बात होते ही चेहरे पर लालिमा दिखे, तो वह तप नहीं है कारण कि यह सब हमारे भीतर की कालिमा के कारण है।

कषायों को दूर करने के लिए हमें संपूर्ण द्रव्यों से दूर होना पड़ेगा। साधना एवं तप की चरम सीमा समता में है। इसके

लिए उपेक्षा ही साधना है और अपेक्षा विराधना है। जैसे-जैसे उपेक्षा करते जाएंगे , वस्तुओं से ममत्व हटाते जाएंगे वैसे वैसे साधना में प्रवेश करते जाएंगे। इसको हम इस दृष्टान्त से समझें कि एक सभा भवन में अनेक व्यक्तियों के साथ तीन तपस्वी बैठे थे। उनका सम्मान होना था, सम्मान की सामग्री 4 थी और जब तक सम्मान की सूचना नहीं मिली तब तक वे तपस्वी अपने ध्यान में लीन रहे। जैसे ही सम्मान के लिए यह घोषणा की गयी कि हमारे पास सम्मान की सामग्री चार है तपस्वी तीन हैं। तीनों को - एक देने पर एक बचेगा यह किसको दिया जाए। जब तक घोषणा नहीं हुई थी तब तक यही सम्मान की सामग्री किसी के अंदर नहीं थी, जैसे ही घोषणा हो गयी कि एक एक सम्मान मिलने वाला है और सम्मान की चार वस्तुएं हैं तो उन्हें कष्ट की अनुभूति हुई , पीड़ा प्रारंभ हुई और जो सम्मान मिल रहा था, उसकी खुशी समाप्त हुई। अतिरिक्त सामग्री के लिए सोचने लगे कि यह किसको मिलेगा? यह मुझे, मिले मुझे, यहां पर जो उनकी अपेक्षा हुई मुझे मिले यह विराधना हो गई। यदि उपेक्षा भाव होता तो वह साधना होती। इसके लिए हमें संयम की ओर अग्रसर होना है और यह उपेक्षा ही तप की ओर ले जा सकेगी। पर द्रव्य से निज को भिन्न करते जाइए इसी का नाम तप है।

भगवान महावीर ने अपने जीवन में दीर्घ तपश्चर्या की। उनकी साधना के दो अंग थे - ***उपवास और ध्यान ।*** भगवान् ध्यान में इतने लीन थे, कि उन्होंने यह सिद्ध किया की आत्मा का सान्निध्य प्राप्त होने पर स्थूल शरीर की अपेक्षाएं बहुत कम हो जाती हैं। इसको एक ज्ञानी ने अपने पास आए हुए जिज्ञासु को इस प्रकार समझाया।

जिज्ञासु - मैंने जो यह सुना कि भगवान महावीर ने छह माह तक तपस्या- उपवास किये। क्या यह सच है? क्या मैं यह समझूँ कि भगवान को भूख लगनी बंद हो गई।वे बीमार थे।

ज्ञानी - तुम्हारा यह सोचना पूर्णतया गलत है।वे बीमार नहीं थे, उन्हें भूख लगनी बंद नहीं हुई।

जिज्ञासु -तो क्या मैं यह समझूं भगवान भूख को सहन करते गए।

ज्ञानी - यह भी सही समझ नहीं है।

जिज्ञासु - तो सही समझ क्या है?

ज्ञानी -भगवान आत्मध्यान में इतने लीन हो गए थे कि उनकी भूख-प्यास की अनुभूति क्षीण होती गयी। उनकी समत्व साधना सुदृढ़ होती गयी। उन्होंने शरीर के प्रति विषयों की उपेक्षा की। परिणामस्वरूप उनका उत्कर्ष होता गया और यही मोक्षमार्ग है। कहने का तात्पर्य यह है कि हम जैसे जैसे उपेक्षा करते जाएंगे, वस्तुओं से ममत्व हटाते जाएंगे वैसे-वैसे साधना में प्रवेश करते जाएंगे।

कहा गया है कि **कर्मक्षयार्थं तप्यते,इति तपः।** जो कर्मक्षय के लिए तपा जाता है उसका नाम तप है। तप के अर्थ से लोग भलीभांति परिचित नहीं है वे समझते हैं उपवास कर लिया तप हो गया। उनके मतानुसार तप अनेक प्रकार के हैं यथा - भोग तप, राज तप, योग तप। गांधी सर्कल या किसी अन्य स्थान पर लोग बैठते हैं उपवास करते हैं अनशन करते हैं तो वह अनशन उनकी आकांक्षा से युक्त है , किसी उद्देश्य के लिए किया गया हैअतः यह भोग तप है। यदि तप किसी पद की प्राप्ति के लिए किया गया हो तो वह राजतप है,पर अपने आत्मकल्याण के लिए,आत्मोपलब्धि सिद्धि का साधन बिना किसी प्रसिद्धि के किया गया तप योग तप होता है।

तप से कर्मों की निर्जरा होती है। जैन जीवनशैली में निर्जरा का महत्वपूर्ण स्थान है। इच्छानिरोधस्तपः । इच्छाओं को रोकना तप है।अन्तरंग कषाय- शक्ति घटने से विशुद्धता होने पर निर्जरा होती है। निर्जरा आत्मशुद्धि के लिए तो है ही लेकिन कर्मों के बंधन का क्षय करने में उसका महत्वपूर्ण स्थान है। तत्वार्थसूत्र में कहा भी गया है कि **तपसा निर्जरा च** । निर्जरा के अंतर्गत बाह्य तप एवं आभयन्तर तप आते हैं।

बाह्य तप शरीर से होता है और आभ्यंतर तप मन से होता है। आभ्यंतर तप भावप्रधान होता है। बाह्य एवं आभ्यंतर तप दोनों छः-छः प्रकार के होते हैं। बाह्य तप में अनशन ,ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रस परित्याग,कायक्लेश, प्रतिसंलीनता है ।आभ्यंतर तप के अन्तर्गत प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग है।

अनशन - आहार का त्याग करना। आहार की इच्छा का त्याग अर्थात प्राणों के मोह को छोड़ना ,मृत्यु के भय को जीतना है। इससे मानसिक विकारों को दूर करने में सहायता मिलती है। अनशन तप को उपवास भी कहते हैं । उपवास अर्थात आत्मा के समीप रहना। आत्मा के आनंदमय एवं ज्ञानमय स्वभाव की अनुभूति वही कर सकता है, जो राग- द्वेष आदि विकारों से दूर रह कर समभाव में रमण करता है।इससे पाचन तंत्र की शुद्धि के साथ शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति होती है।

ऊनोदरी- भूख से कम खाना। इससे खाद्य संयम की साधना को शक्ति मिलती है। अनावश्यक अन्नादि संचय करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगता है। अधिक खाने से मस्तिष्क पर रक्त का दबाव बढ़ जाता है। इससे स्फूर्ति का कम होना, नींद का अधिक आना, प्रमाद का अधिक होना,वायु विकार आदि हो जाते हैं। यह तप मानसिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है।

भिक्षाचरी- इसका सम्बन्ध निर्दोष आहार ग्रहण करने की विधि से है। साधक को निर्दोष आहार, जलादि वस्तुएं उपलब्ध हों ऐसी व्यवस्था रखना। शुभ भावना से जीवन में पवित्रता आती है और आत्मिक विकास के साथ मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है।

रस परित्याग - इसमें स्वाद वृत्ति पर विजय प्राप्त करते हुए स्वादिष्ट खाद्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिए। नीरस भोज्य पदार्थों का सेवन करना रस परित्याग है। यह जैन जीवनशैली का महत्वपूर्ण घटक है।रस परित्याग साधु-संतों, गृहस्थों आम जनादि सभी के लिए आवश्यक है। भोजन में रसपरित्याग कोलेस्ट्रॉल, मोटापा, उच्च रक्तचाप, हृदयरोग आदि से बचा जा सकता है । वर्तमान काल में बढ़ते मांसाहार और होटलों में खाने की प्रवृत्ति स्वादलोलुपता का ही परिणाम है। तन- मन को स्वस्थ रखने के लिए सात्विक भोजन की ओर प्रवृत्त होना ही इस तप का लक्ष्य है।

कायक्लेश - इस तप का प्रयोजन शरीर को कष्ट देना नहीं है अपितु सर्दी -गर्मी, वर्षा, धूपादि सहन करते हुए स्थिर आसन से रहना, काया को सक्रिय रखना, अनुशासित और संयम में रहना है। यह तप व्यक्ति को सहिष्णु एवं सहनशील बनाता है। इससे मानसिक रोगों पर विजय के साथ आत्मभाव का पोषण होता है।

प्रतिसंलीनता - एकांत स्थान पर रहना, क्रोध आदि से दूर रहते हुए असत् प्रवृत्तियों से इंद्रियों को दूर करते हुए सद्वृत्तियों में लीन करना है। राग-द्वेष में वृद्धि करने वाले शब्दों को नहीं सुनना, विकार उत्पन्न करने वाले दृश्यों को नहीं देखना, सुगन्ध- दुर्गंध आदि पर विजय प्राप्त करना, रसेंद्रिय पर विजय प्राप्त करना, स्पर्श में सुखानुभूति एवं दुःखानुभूति से ऊपर उठना, क्रोध को क्षमा भाव से, अहम् को विनय से, माया को सरलता से और लोभ को संतोष से दूर करना प्रतिसंलीनता तप है। इसमें काम- क्रोध- लोभ आदि पर अंकुश लगने से जीवन को आनंदमय बनाया जा सकता है और व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में शांति, संतोष एवं आत्मिक सुख प्राप्त होता है। मानसिक तनाव से मुक्ति मिलती है।